

## ‘वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सन्त साहित्य की उपयोगिता’

डॉ. ऋषिपाल,

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,

हिन्दी-विभाग,

बाबू अनन्त राम जनता कॉलेज,

कौल, कैथल (हरियाणा)

Email: [rishipalsuman@gmail.com](mailto:rishipalsuman@gmail.com)

वर्तमान युग विज्ञान एवं संचार माध्यमों का युग है। विश्वग्राम कहे जाने वाला समस्त संसार एक मुट्टी में समा गया लगता है। वैश्वीकरण के इस दौर में हम क्षण में ही विश्व के किसी भी देश में घर बैठे बातें कर सकते हैं व पलक झपकते ही हम कहीं भी पहुँच सकते हैं। जिन चमत्कारों की केवल कल्पना की जाती थी, आज वे सब साकार हो गए हैं। आज, वैश्वीकरण ने जहाँ व्यक्ति को विश्वकेन्द्रित कर महिमा मण्डित किया है, वहीं बाजारवादी संस्कृति के दुष्प्रभावों ने उसके व्यक्तित्व को बौनापन भी प्रदान किया है। विश्वगुरु की पदवी को प्राप्त भारत देश वर्तमान में पाश्चात्य की चकाचौंध के वशीभूत अपने संस्कारों से विहीन होकर, इसके विपरीत मार्ग को अपना रहा है, जिसके कारण भारतवर्ष निरन्तर पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। चारों ओर समाज में अहिंसा, आतंक, भेदभाव, गरीबी, मानवीय मूल्यों में गिरावट, नैतिक मूल्यों का पतन आदि विद्रूपताओं एवं विसंगतियों का बोल-बाला है। वर्तमान में बाजारवादी संस्कृति ने व्यक्ति को असंतोष प्रदान किया है। वर्तमान भौतिकवाद एवं बाजारीकरण के इस युग में क्षेत्रवाद, जातिवाद का नंगा नाच, धार्मिकता-अधार्मिकता का सवाल, भौतिक सुखों को पाने की अमानवीय प्रतिस्पर्धा, अनपढ़ता, बेरोजगारी, नशा, नैतिक मूल्यों का पतन, राजनीतितक कुटिल चालें आदि कुचक्रों ने आज पुनः भारतीय समाज को विघटन के कगार पर लाकर पटक दिया है।

आज समस्त मानवता के समक्ष यही प्रश्न है कि इस सुन्दर सृष्टि को विनाश के महाआतंकी राक्षस से कैसे बचाया जा सकता है? इस घोर विकट स्थिति को देखकर लगता है कि संतवाणी ही वह गुरुमंत्र है, जो मानव को आत्म पहचान कराने में समर्थ है क्योंकि संतों की वाणी में अमोघ शक्ति है। सन्तों के साहित्यिक उपवन में अनेक ऐसे मीठे मनोहर फल लगे हुए हैं जिनके सेवन करने मात्र से अनेक कष्टों एवं पीड़ाओं से मुक्ति मिल सकती है। त्रिविध तापों से संतप्त जनता सन्त काव्य के उपवन में आकर दुःख निवृत्ति करती है। सही अर्थों में सन्तों ने जीवन और जगत की वास्तविकता को पहचाना था। सन्तों के नैतिक मूल्य बाहर से ओढ़े लबादे नहीं, उनके जीवन के निष्कर्ष हैं। डॉ. केशनी प्रसाद चौरसिया के शब्दों में, “हिन्दी सन्त साहित्य ‘महामानव समुद्र’ भारत के हृदय की धड़कन का, यहाँ के जन-जीवन की आशा-आकांक्षा का तथा हास्य-रुदन और हर्ष-विषाद का साहित्य है। संत साहित्य की साधना लोक-धर्म की संस्थापिका और प्रतिष्ठापिका है। भारतीय जनता की आशा-निराशा, प्रेम-घृणा अथवा उल्लास-उदासी का जैसा मूर्तिमान प्रतिबिम्ब संत-साहित्य के परिमार्जित दर्पण में उजागर हो उठा है, वह अन्यत्र कम ही सुलभ है।”<sup>1</sup>

सन्त साहित्य समस्त जनजीवन को सदुद्देश्य की ओर प्रेरित करने वाला है। सन्तों ने अपनी वाणी के माध्यम से जो चेतावनियाँ दी हैं, वे हमेशा समाज के लिए हितकारी एवं कल्याणकारी हैं। डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा के शब्दों में, “सन्तों की वाणी में समाज के ‘नकारात्मक और सकारात्मक’ दो पहलू हैं। नकारात्मक पहलू के अन्तर्गत उन्होंने जाति-पाति, छुआछूत, सामाजिक विषमता, पाखण्ड, अत्याचार, जीव-हिंसा, भोगवाद, अंधविश्वास आदि मानवता विरोधी प्रवृत्तियों के प्रति विद्रोह किया है। उन्होंने बिना किसी भेदभाव के हिन्दू-मुसलमान की सामाजिक विकृतियों पर जमकर प्रहार किए हैं। सकारात्मक पहलू के अन्तर्गत उन्होंने प्रेम, अहिंसा, सत्य, करुणा आदि शाश्वत मानवमूल्यों की प्रतिष्ठा की है।”<sup>2</sup> सन्तों का ब्रह्म दीन दयाल है, कृपाल है, भक्त वत्सल और भयहारी है। सन्तों की ब्रह्मकल्पना ऊपर-ऊपर से विलक्षण है, लेकिन भीतर से बहुत ठोस और प्यारी है। डॉ. राजदेव सिंह लिखते हैं, “सन्तों का राम न ज्ञानियों का अद्वैत ब्रह्म है, न भक्तों का सगुण ब्रह्म। वह इन दोनों के बीच का है। वह अद्वैत सत्ता है, लेकिन प्रेम का अविषय नहीं है, दया माया से हीन नहीं है, भक्त का दुःख दर्द उस तक पहुँचता है।”<sup>3</sup> सन्तों ने अपनी वाणी में मानव को सन्यास लेना या घर त्यागना जरूरी नहीं, इस बात को स्पष्ट किया है।

अनेक सन्त गृहस्थी होते हुए भी सन्यासियों से भी उत्कृष्ट करनी कर गये। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में, "सांसारिक विषमताओं से घबराकर, वेशधारी साधु का रूप धारण कर, वे भाग कर जंगलों में ब्रह्म की साधना करने नहीं गये। उन्होंने, नारी के कामिनी रूप की निंदा करके भी, सामान्य गृहस्थ जीवन को अपनाया।"<sup>4</sup> सन्तों की वाणी लोक-कल्याण की वाणी थी। समाज-कल्याण को ही सन्तों ने अपने काव्य और जीवन का प्रमुख उद्देश्य स्वीकार किया था। सभी सन्त कवियों ने जन-कल्याण के विचार ही अपनी रचनाओं में व्यक्त किए हैं। उन्होंने तत्कालीन समाज की पीड़ा को समझा और उसका व्यावहारिक समाधान निकालकर जन-भाषा में जनता के सामने रखा। सभी सन्तों ने उन परम्पराओं का घोर विरोध किया जो समाज की प्रगति को अवरुद्ध किए हुए थी। सन्तों के साहित्य में एक ओर जहां ईश्वर-भक्ति की बात मिलती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक समता पर भी पूरा जोर दिया गया है। संतों ने सदैव साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना का जोरदार विरोध किया। उन्होंने तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की स्थिति के प्रति पारस्परिक सौहार्द का उपदेश दिया। सन्त रैदास लिखते हैं –

“कृष्ण करीम राम हरि राघव जब लागि एक न पेषा।

वेद कतेब कुरान पुरातन सहज एक करि भेषा।”<sup>5</sup>

संत कवियों की वाणी ने जो अलख जगाया, वह हमारे आज के टूटते-बिखरते जीवन के सापेक्ष उतना ही मूल्यवान है, जितना अपने युगीन सन्दर्भों में था। वर्तमान युग में धनकेन्द्रित उपभोक्तावादी संस्कृति की निस्सारता को सन्त कुम्भनदास के शब्दों में समझा जा सकता है, जिन्होंने कहा था – ‘संतन को का सीकरी से काम।’ धन दौलत को पत्थर का टुकड़ा मानने वाली भारतीय संस्कृति ही वर्तमान परिस्थितियों में जन्मी असंतोष की लहर का अन्त कर सकती है। सन्तों ने कथनी और करनी के एक होने की आवश्यकता का पर जोर दिया, जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिक है। कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों के ढोंग, पाखण्डों पर तीखा व्यंग्य किया है। कबीर जब यह कहते हैं –

“हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।

कहै कबीर सुनौ हे साधौ, कौन राह हवै जाई।”<sup>6</sup>

तो यह बात सीधे-सीधे आज के वैश्वीकरण से घिरे व द्रुतगति से विकास की ओर बढ़ते भारत व उसके समाज में भड़कने वाले हिन्दू-मुस्लिम दंगे हमें सन्तों की वाणी के सन्दर्भ को समझने सोचने के लिए मजबूर करते हैं। संतों का मानना था कि समाज में व्याप्त पाखण्डों को प्रोत्साहित करने में शास्त्रों का पर्याप्त हाथ है। उन्होंने अबोध जनता को पण्डितों और मुल्लाओं के कुत्सित प्रभाव से बचने के लिए अपनी वाणी द्वारा लोगों को आगाह

किया। कबीर कहते हैं –

“पण्डित वेद पुरान पढ़ै, और मौलाना पढ़े कुराना।

कहै कबीर वे नरक गये, जिन हिरदय राम न जाना।”<sup>7</sup>

संतों ने अनेक सामाजिक, धार्मिक समस्याओं का समाधान अपने साहित्यिक गलियारे से दिखाने का प्रयास किया है। संतों का केवल मात्र ध्येय एक साफ-सुथरा एवं स्वस्थ समाज निर्माण करना था। उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों, दुराग्रहों और निरर्थक रीति-रिवाजों को पाखण्ड मानकर घोर विरोध किया। आडम्बरों में लिप्त साधुओं की आलोचना करते हुए संत दरिया साहब कहते हैं—

कहिं बाधि जटा सिरजूट रखे, कहिं मोर गुदर को सीवता है।

कहिं खाकिया खाक बधबरि है, कहिं पांव उलटि के रीवता है।

कहिं मुदरा देन्हि स्रवन सोभा, कहिं साधि पवन को पीवता है।”<sup>8</sup>

सन्तों ने अपनी वाणी के माध्यम से तत्कालीन समाज में हिन्दूओं की तीर्थ-यात्रा और मुसलमानों द्वारा हज-यात्रा की पवित्रता और भक्तिभावना को लेकर लोगों के मन में व्याप्त अंधविश्वासों को लेकर भी आवाज उठाई। संतों ने जोर देकर कहा कि भला ऐसे हज का क्या लाभ? कबीर आदि संत काजी को भी उपदेश देते हैं

कि वह अपने शरीर में ही मक्का और काबा को देखे। जब ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, केवल तीर्थ-स्थानों तक ही सीमित नहीं है, तो वहां भटकने की क्या आवश्यकता है? संतों का मानना है कि जो आदमी मन में विकार लेकर तीर्थ पर जाता है उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। वे मानते हैं कि सच्चा स्नान तो गुरु की सेवा है। कबीर इस प्रकार के आडम्बरो का विरोध करते हुए लिखते हैं –

“तीरथ करि-करि जग मुवा, दूबे पांणी न्हाइ।

रामहिं राम जपंतड़ा, काल घसीट्यां जाइ।।”<sup>9</sup>

सन्तों ने मुसलमानों को भी तीर्थ-स्थानों के चक्कर काटने से बचने के लिए अनेक बार आगाह किया है। कबीर कहते हैं –

“कबीर हज करने होई गइआ, कैसी बार कबीर।

सांई मुझ महि किआ खता, मुखहु न बोले पीर।।”<sup>10</sup>

सन्तों ने तत्कालीन समाज में हिन्दू और मुसलमानों में एकता कायम करने के भरसक प्रयास किए। संतों ने दोनों धर्मों की आन्तरिक एकता को रेखांकित किया और उनके ऊपरी विभेदों को नकारा। उन्होंने मानवता को समान समझते हुए राम-रहीम का भेदभाव नहीं किया। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने ठीक कहा है, “उस समय की यही स्पष्ट मांग थी कि हिन्दू और मुसलमान अड़ोसी-पड़ोसी की भांति प्रेम और शान्ति से रहें और इन उदार चेताओं को भी इस आवश्यकता का स्पष्ट अनुभव हुआ था। दोनों जातियों के दूरदर्शी विरक्त महात्माओं को जिन्हें जातीय पक्षपात छू नहीं गया था, जिनकी दृष्टि तत्काल के हानि-लाभ, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद से परे जा सकती थी, इस आवश्यकता का सबसे तीव्र अनुभव हुआ।”<sup>11</sup> हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक व सामाजिक मतभेदों, परस्पर झगड़ों, विवादों कटुता आदि से दूर दादू इन दोनों धर्मों से दूर रहकर मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने की बात अपनी वाणी के माध्यम से करते हैं –

“दादू ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मूसलमान।

षट्दर्शन में हम नहीं, हम राते रहमान।।”<sup>12</sup>

सभी संतों ने हिन्दू-तुर्क के नाम पर प्रचलित भेदभाव का घोर विरोध किया है। रज्जब हिन्दू-मुसलमानों के बीच समभाव का उपदेश देते हुए लिखते हैं –

“हिन्दू तुरुक दुन्यूं जल बूदा। कासूं कहिए बांभण सूदा।

रज्जब समता ग्यान विचारा, पंत तत्त का सकल पसारा।।”<sup>13</sup>

बुल्लेशाह ने भी हिन्दू और मुसलमानों में कोई भेद नहीं माना –

“दुई दूर करो, कोई सोर नहीं। हिन्दू तुरुक कोई होर नहीं।

सब साधु लखौ कोई चोर नहीं। घट-घट में आप समाया है।।”<sup>14</sup>

सन्तों ने जन सामान्य कथनी व करनी में सामंजस्य स्थापित करने की बात पर जोर दिया। संतों के स्वयं व्यावहारिक आचरण और वाणी में एकता थी। कथनी और करनी की एकरूपता से मानव जीवन में सफलता प्राप्त कर लेता है। संतों का मानना है कि जिन लोगों के कर्म ही वाणी से विपरीत हों, तो उनके वचनों का प्रभाव अन्य लोगों पर क्या पड़ सकता है? ऐसे लोग समाज में विश्वास के पात्र नहीं समझे जाते। दादूदयाल कहते हैं –

“दादू कथणी और कुछ, करणी केरे कुछ और।

तिन थैं मेरा जीव डरै, जिनके ठीक न ठौर।।”<sup>15</sup>

गरीबदास ने भी कथन के साथ-साथ आचरण को महत्त्व देने वाले लोगों को सही माना है। वे मानते हैं कि कर्म और वचन की समानता वाले व्यक्ति साक्षात् ब्रह्म का स्वरूप हैं और कथन और करनी में भिन्नता जिन लोगों के व्यवहार में है, वे उन्हें दुष्ट और घृणित व्यक्ति मानते हैं –

गरीब करनी कूं कुरबान जां, कथनी कथे किह कूत।

करनी बानी ब्रह्म है, कथनी बकते भूत।।<sup>16</sup>

सन्त कवियों ने तत्कालीन अव्यवस्थित और विशृंखल समाज को जोड़ने के लिए अनेक उत्तम आदर्श स्थापित किए। मानवतावाद में अभेद की स्थापना तभी सम्भव है, जब सब में एकता के दर्शन किये जायें। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि “सामाजिक, धार्मिक, दुर्व्यवस्थाओं का विरोध विविध सन्तों के उस असन्तोष का फल है, जो उन्हें सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनुभूत हो रहा था।<sup>17</sup> सन्तों ने मनुष्य मात्र में परमात्मा की ज्योति को समझने की बात पर जोर दिया। वे हमेशा जाति-पाति से ऊपर उठकर दिन रात नाम स्मरण पर ही जोर देते थे। सन्त नामदेव कहते हैं –

“हिन्दू पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत।

नामा सोई सेविया, जहं देहुरा न मसीत।।<sup>18</sup>

नारी विमर्श को लेकर गुरु नानक देव जी लिखते हैं “तिन क्यूं मंदा आखिएँ, जिन जमिओ राजान।” वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में बाजारवादी संस्कृति ने पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष व अहंकार को जन्म दिया है, जिन्हें सन्तवाणी ही दूर कर सकती है। लोगों को प्रेम, प्यार, त्याग, समर्पण आदि का संदेश देते हुए कहा है “प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय। राजा प्रजा जेहि रूचै, सिर दे ले जाए।” संतों की बात मानवता को उच्च आदर्शों की ओर ले जाती है। विश्वग्राम कहे जाने वाले समस्त संसार एवं बाजारीकरण के दौर में अपरिमित सुविधाओं में जीवन की आवश्यकताओं का उद्घोष करने वाली जड़ सोच को कबीरदास की वाणी संयमित और

अनुशासित करने की सामर्थ्य रखती है –

“साई एता दीजिए जामै कुटुम्भ समाए।

मैं भी भूखा न रहूँ, साध न भूखा जाए।।<sup>19</sup>

उनका यह कथन मानवीय आवश्यकताओं को मर्यादा में बांधने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। सभी संत भारतीय समाज के संरक्षक व पोषक थे। वे भेदभाव तथा वर्ण-व्यवस्था की विकृतियों को समूल नष्ट कर देना चाहते थे। संतों ने ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त करने की आवाज उठाई। रविदास ने समाज की इस पीड़ा को अपनी वाणी के माध्यम से बड़ी सहजता से व्यक्त किया है –

“रविदास जन्म के कारनै, होत न कोऊ नीच।

नर को नीच कर डारि है, ओछै करम की कीच।।<sup>20</sup>”

सन्तों ने तत्कालीन समाज में आन्तरिक नैतिक बल और स्वाभिमान के सहारे छुआछूत की व्यापक भावना के विरुद्ध भी आवाज उठाई। दिनेशचन्द्र भारद्वाज के शब्दों में, “सम्पूर्ण समाज विभिन्न जातियों में विभाजित हो गया था, जिसमें परस्पर आदान-प्रदान की कम सम्भावनाएं रहती थी। ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और वैश्यों का समाज में उच्च स्थान था, परन्तु शूद्रों की दशा पूर्व की अपेक्षा और गिर गई थी।<sup>21</sup> कबीर तत्कालीन समाज में होने वाले इस अनर्थ को देखकर बहुत दुःखी थे। उन्हें ब्राह्मणों के मिथ्याडम्बरों से घृणा थी। वे लिखते हैं –

“जे तू बांभन बांभनी जाया, तो आन बाट है काहे न आया।।<sup>22</sup>”

समत्व की भावना को लेकर दादूदयाल लिखते हैं –

“आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।

दादू मूल बिचारिए, तो दूजा कौण गंवार ।।<sup>23</sup>

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सन्तों ने समाज की एकता और अखण्डता को बनाये रखने में अपना अहम् योगदान दिया। उन्होंने धर्म और उसमें निहित समस्त आडम्बरों एवं अन्धविश्वासों का सदैव पर्दाफाश किया है। सन्तों ने अपनी वाणी के माध्यम से धार्मिक भेदभाव को मिटाकर सब जातियों में भावात्मक एकता लाने का भरसक प्रयास किया। सन्त मानवतावादी थे। उन्होंने सभी बाह्याचारों, शास्त्र और शास्त्रवाद तथा अवतारवाद का विरोध किया ताकि व्यक्ति-व्यक्ति से जुड़ सके। इस घोर संकट काल में संत वाणी ही दिशाहीन, भटकते मानव को सच्ची जीवन पद्धति प्रदान करती है। संतवाणी ही मानवमूल्यों का मंगलकोष है। हम कह सकते हैं कि धर्म और विभिन्न सम्प्रदायों के सन्दर्भ में संतकवि जितने उस समय प्रासंगिक थे, आज भी उतने ही या शायद उससे भी अधिक प्रासंगिक हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सन्त साहित्य ही संसार में विज्ञान व साहित्य, यन्त्र एवं मनुष्य के बीच सुमेल कराने में सक्षम है। हम कह सकते हैं कि युगों-युगों से पीड़ित और दिग्भ्रमित मानवता के लिए सन्त साहित्य हमेशा ज्योतिर्मय एवं अमृत संजीवनी था, आज भी है और आगे भी रहेगा। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सन्त साहित्य व्यक्ति व समाज को संयमित और अनुशासित जीवन जीने की प्रेरणा देते हुए अपनी उपयोगिता को सार्थक बनाता है।

### संदर्भ.

1. केशनी प्रसाद चौरसिया, मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना', पृ. 55
2. डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 118
3. डॉ. राजदेव सिंह, संत साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, पृ. 113
4. परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ. 526
5. लोकप्रिय संत-भक्त कवि संत रैदास, सम्पादक : योगेश गुप्त, पृ. 19
6. वियोगी हरि, संत सुधासार (कबीर), खण्ड 1, पृ. 109
7. सं. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 28
8. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, संत कवि दरिया : एक अनुशीलन, पृ. 143
9. सं. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 243
10. सं. रामकुमार वर्मा, सन्त कबीर, पृ. 277
11. सं. पीताम्बर दत्त बड़थवाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ. 15
12. सं. सुधाकर द्विवेदी, स्वामी दादूदयाल की वाणी, 13/50
13. सन्त सुधासार (बिहार वाले दरिया साहब), खण्ड 2, पृ. 530
14. सन्त बानी संग्रह (बुल्लेशाह), भाग 1, पृ. 190
15. सन्त बाणी संग्रह (कबीर), भाग 1, पृ. 93
16. गरीबदास की बानी, गुरुग्रंथ साहिब, पृ. 95
17. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ. 94
18. सं. वियोगी हरि, सन्त सुधा सार, पद 18,, पृ. 8
19. सं. पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 160
20. सं. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत गुरु रविदास वाणी, पद 83, पृ. 103
21. दिनेश चन्द्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति, पृ. 30
22. सं. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, पद 41, पृ. 79
23. सं. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रन्थावली, पृ. 273